# बलिहारी गुरु आपने...

पल्लव

हिन्दी में जीवनी लिखने का चलन प्रायः नहीं है। इसे दूसरी कोटि का लेखन समझा जाता है। अगर भारत सरकार के प्रकाशन विभाग की 'आधुनिक भारत के निर्माता' शृंखला न होती तो शायद ही हिन्दी में जीवनियां लिखी जातीं। साहित्य अकादमी की मोनोग्राफ प्रकाशन शृंखला में भी लेखक पर छपी पुस्तक में कुल अस्सी-सौ पृष्ठों में लेखक के जीवन पर महज पांच या सात पृष्ठ होते हैं। अंग्रेजी को देखें या किसी विश्व भाषा को, हिन्दी के प्रारंभिक दौर में भी ऐसा नहीं था अपितु बाद तक भी बढ़िया जीवनियां लिखी गईं। अमृत राय ने प्रेमचंद की जीवनी *कलम का सिपाही* लिखी तो विष्णु प्रभाकर ने शरत चन्द्र पर *आवारा मसीहा*। आगे यह सिलसिला लगभग बंद हो गया। फिर किसी राजनेता या बड़े फिल्मकार का मामला हो तो ठीक, भला एक शिक्षक पर कौन पूरी किताब लिखे? आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को हम सब श्रेष्ठ विद्वान और लेखक के रूप में तो जानते हैं लेकिन उनके शिक्षक को बहुधा नहीं जानते। उनके योग्य शिष्य और सुपरिचित विद्वान विश्वनाथ त्रिपाठी ने बीते दिनों एक किताब लिखी है- *व्योमकेश दरवेश*। दरवेश का मतलब संत, जिसको संसार की माया से मोह न हो। व्योमकेश का किस्सा भी रोचक है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के बाल ऊर्ध्वमुखी थे यानी खड़े रहते थे। इसी के आधार पर उन्होंने अपना नामकरण किया व्योमकेश। जिसके बाल आकाश की तरफ हों वह व्योमकेश और शास्त्री इसलिए कि शास्त्री की पढ़ाई की थी। साढ़े चार सौ से ज्यादा पृष्ठों की इस किताब का महत्त्व इस बात में है कि जिस मनोयोग से अपने गुरु के व्यक्तित्व के सभी पक्षों पर त्रिपाठी जी ने लिखा है वैसा अब लगभग दुर्लभ है। इसके लिए निजी संस्मरणों को याद करने के साथ उन्होंने जरूरत लगने पर शोध भी किया है। इस तरह की एक ही किताब याद आती है - *निराला की साहित्य साधना,* जिसे तीन वृहद् खण्डों में रामविलास शर्मा ने लिखा था। ध्यान देने की बात यह है कि रामविलासजी निराला के शिष्य नहीं थे और न निराला अध्यापक। इस तरह से यह किताब हिन्दी में किसी हिन्दी अध्यापक के यशस्वी अध्यापन का श्रद्धापूर्वक स्मरण करती हुई पहली किताब है।

भूमिका में त्रिपाठी जी ने लिखा है- 'हमारे गुरु पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसा परम मानवीय व्यक्तित्व मुझे जीवन में दूसरा नहीं दिखा।' ठीक बात है ऐसा होता है कि जिस पर हमारी श्रद्धा हो हम उसको ही एकमात्र समझें। त्रिपाठी जी किताब में केवल अपने गुरु आचार्य द्विवेदी ही नहीं अपितु उन तमाम अध्यापकों का भी स्मरण करते हैं जिन्होंने द्विवेदी जी के साथ उन्हें पढ़ाया था। इस तरह से हिन्दी अध्यापन की विभिन्न प्रणालियों को जानने के लिए इस किताब को पढ़ना अत्यंत रोचक और ज्ञानवर्धक है। अपने गुरुजन में त्रिपाठी जी ने विजय शंकर मल्ल, पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रूद्र काशिकेय, डॉ. श्रीकृष्ण लाल, डॉ. छैलबिहारी गुप्त, पंडित करुणापति त्रिपाठी आदि के अध्यापन के जैसे विवरण दिए हैं, उन्हें पढ़ना समृद्ध अनुभव है। इसका कारण रोचक ढंग से लिखा जाना नहीं है अपितु अध्यापन के आंतरिक तौर-तरीकों पर लेखक की बारीक नजर होना है जो हमें पढ़ाने के रहस्य बताती है।

पहले आचार्य द्विवेदी जी- 'द्विवेदी जी क्लास में, क्लास के बाहर एक ही जैसा बोलते। वे शास्त्रज्ञ तो थे लेकिन उनकी शास्त्रज्ञता लोकोन्मुख थी। किताब की बातें ज्यादातर वे जीवन से जोड़ते। साहित्य की व्याख्या वे जीवन संदर्भों में करते। साथ ही यह भी बताते कि साहित्य में रूढ़ियों का कितना बड़ा महत्त्व है। ...उनके क्लास में हम साहित्य के मायालोक में पहुंच जाते और वहां से अपना जीवन-अनुभव पहचानते। पढ़ाते समय, सभाओं, गोष्ठियों में भाषण देते हुए जैसे कि उनका स्वर या शरीर छंदमय हो जाता। उनकी बांहें उत्ताल तरंग बनातीं। ...लोकों का उच्चारण जब वे अपने मन्द स्वर में करते तो प्राचीन साहित्य की गरिमा साक्षात हो जाती। पंडितजी की आवाज में अनेक स्वर शाखाएं सुनाई पडतीं। सब परस्पर सघन-संबद्ध जैसे कई धाराओं का जल मिलकर कोई गंभीर प्रवाह सुनाई पड़ रहा हो। उनकी आवाज में आकाश जैसा अवकाश होता। बादल जैसी गंभीरता और सागर जैसी गहराई होती। भोजपुरी की लय, शब्दों के उच्चारण और वाक्य के अनुतान में साफ सुनाई पड़ती। भोजपुरी की लै, उनके कथन और भाषण को और आत्मीय बनाती। लेकिन यह सब सहज, अकृत्रिम था, आयासपूर्ण नहीं। आयास की गंध भी मिले तो सहज-सौन्दर्य नष्ट ही नहीं हो जाता, उलटे वितृष्णा पैदा करता है।'

'द्विवेदी जी की क्लास की हम उत्सुकता से प्रतीक्षा करते। वे पाठ्यपुस्तक को बैग में लाते। अपने कक्ष से क्लास रूम की ओर धीरे-धीरे बढ़ते। कुर्ता-धोती साफ-सुथरे लेकिन गुचुर-मुचुर। इस्त्री नहीं मालूम पड़ती। कंधे पर उत्तरीय। क्लास में कोट पहने नहीं देखा। कुर्ता ऊनी। ज्यादा जाड़े में कुर्ते के ऊपर कुर्ता। यों बाहर कोट बंद गले का लंबा पहनते थे। सर ऊपर उठाए मानो आसमान की ओर ताक रहे हों। बैठकर पढ़ाते। कुर्सी में बैठ जाते तो क्लास भरा-भरा लगता। तन्मयता से पढ़ाते। पाठ्यांश-काव्य-पंक्तियां-सुस्पष्ट यथोचित लय से बांचते।'

**पल्लव**

लगभग एक दशक से हिन्दी साहित्य का अध्यापन, हिन्दी की लघु पत्रिका 'बनास जन' के संपादक। संप्रति : हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्राध्यापक हैं।

कक्षा में पढ़ने वाले अध्यापक को कैसा होना चाहिए? त्रिपाठी जी अपने गुरु आचार्य द्विवेदी को याद करते हुए बताते हैं- 'द्विवेदी जी क्लास में भी अनौपचारिक रहते। शान्ति निकेतन में आम्रकुंज की छाया में कक्षा का वातावरण स्वभाव में बैठ गया होगा। एकाध बार ऐसा भी हुआ जब पंडितजी ने कहा - यह अर्थ खींच-खांचकर लगा रहा हूं। अर्थ मुझे स्पष्ट नहीं है। तुम लोग प्रयास करो। कोई विद्यार्थी कभी क्लास में ही उनसे भिन्न दूसरा अर्थ सुझा दे और वह अर्थ पंडितजी को ठीक लगे तो उसकी प्रशंसा करते, यह भी कहते - अरे! यह अर्थ तो मुझे सूझा नहीं था। अट्टहास क्लास में भी गूंजता।' यह है निश्छलता। आकाशधर्मा गुरु ऐसा ही हो सकता है जिसे झूठ बोलने के स्थान पर अपने विद्यार्थियों से स्पष्ट कह देने में हेठी न लगती हो। ऐसे ही सरल स्वभाव में विद्वत्ता का निवास होता है। 'पंडितजी का सप्ताह में एक क्लास ऐसा होता था जिसमें कुछ पाठ्य निर्धारित नहीं होता। जिसके मन में जो आए पूछे। कोई न पूछे तो पंडितजी ही जो मन में आए बोलते। वह उनका सबसे लोकप्रिय, रंजक और ज्ञानवर्धक क्लास होता।'

ऐसा नहीं है कि छात्रों में लोकप्रिय और विद्वानों में आदरणीय अध्यापक का विभाग में सदैव आदर हो। आचार्य द्विवेदी के साथ यह तक हुआ कि उन्हें कुचक्रों के कारण बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से निकाल दिया गया। वे यहां शांति निकेतन से अध्यापन करने आए थे। इस षडयंत्र में उन्हीं के विभाग के साथी अध्यापक शामिल थे। उन अध्यापकों के प्रति आचार्य का व्यवहार तो देखिए- 'अपने सहयोगी अध्यापकों का नाम विशेषतः डॉ. शर्मा और पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का बहुत आदर से लेते। विभाग के बाहर दीर्घा में भेंट होती तो दोनों हाथ जोड़कर काफी झुककर प्रणाम करते।'

अध्यापक और गुरु में क्या कोई अंतर होता है? शायद इसी को समझाने लिए अपने गुरु पर चर्चा करते हुए त्रिपाठी जी एक सूत्र देते हैं। वे पूछते हैं- कारीगर-सहृदय कलाकार कैसे बनता है? स्वयं ही उत्तर देते हैं- कृति में रच-बसकर। समझने की बात यही है कि अपने विषय में डूबकर अपने विद्यार्थियों के साथ घुलकर ही कोई अध्यापक गुरु का दर्जा प्राप्त कर सकता है।

अब पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को देखें- 'मिश्र जी शब्द क्रीडा के अद्वितीय कौतुकी थे। वे शब्द विलासी थे। ...वे ललकारती लय और मुद्रा में सूत्रों का विश्लेषण करते। अन्तर्ध्वनि यह - और छात्र उसे सगर्व आत्मीयता से अनुभव करते कि ऐसा और कोई नहीं पढ़ा पाएगा। हम विषय के सर्वज्ञ, श्रेष्ठ गुरु से पढ़ रहे हैं - गिरीश का अर्थ शंकर नहीं हिमालय-गिरीणाम ईशः गिरीशः। शंकर का अर्थबोधक शब्द है गिरीश गिरौ शयते स, गिर में शयन या निवास करने वाला शंकर।' यह है शब्द की लीला। इस लीला को विद्यार्थियों के सामने कितने अध्यापक खोल पाते हैं? जो भारत प्रेमी इस बात से दुखी होते रहते हैं कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं मिला उन्हें हिन्दी के शब्दों से ऐसा गहरा प्रेम करने और करवाने वाला अध्यापक मिलना चाहिए।

विजय शंकर मल्ल को भी देखें- 'मल्ल जी का गद्य-लेखन अद्‌भुत था। उतना संयत, सटीक गद्य उस समय शायद ही कोई और लिखता हो। लमछर सुन्दर हस्तलिपि। ...उनका अंतिम लेख आलोचना में 'भारतेंदु युग का हंसमुख गद्य' नाम से छपा था। 'हंसमुख गद्य' के नाम से ही आप उनके गद्य-लेखन की क्षमता का अन्दाजा लगा सकते हैं।'

**व्योमकेश दरवेश**
विश्वनाथ त्रिपाठी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002
मूल्य : 600 रुपए

यह है हिन्दी अध्यापन के पुरोधा आचार्यों की शैलियां। तथ्यों के जाल को छोड़कर देखें तो कायदे से विश्वविद्यालयी हिन्दी अध्यापन की शुरुआत बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से माननी चाहिए। डॉ. श्यामसुंदर दास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे विद्वान अध्यापकों द्वारा जिस विभाग की नींव डाली गई थी वहां के हिन्दी अध्यापन के बारे में इस गहराई से जानना क्या कम महत्त्वपूर्ण है। पुस्तक के एक अध्याय 'अध्यापक-मंडल' का पहला ही वाक्य है- 'हिन्दी विभाग के अधिकांश अध्यापकों का कंठ गंभीर मधुर था। उनका उच्चारण आकर्षक और भाषा-प्रवाह संयत, व्याकरण सम्मत था।' इस बात को लिखने का मतलब क्या है? यदि मतलब खोजा जाए तो यही है कि एक अध्यापक को बहुत अच्छा वक्ता होना ही चाहिए। इधर एक सूचना आई थी कि कॉलेज अध्यापकों की अर्हता के लिए होने वाली परीक्षा से अब वह प्रश्न पत्र हटाया जा रहा है जिसमें लम्बे-लम्बे उत्तर लिखने होते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि अध्यापक ऐसा हो जो सूचना संपन्न पूरा हो लेकिन व्याख्याकार न हो तो कोई बात नहीं। तो अब लम्बे-लम्बे सरस और विद्वतापूर्ण भाषण सुनाने वाले अध्यापक नहीं मिलेंगे। हां, सूचनाएं उनके पास कहीं ज्यादा हैं।

पुस्तक सचमुच बड़ी है, बड़ी इस अर्थ में कि द्विवेदी जी के जीवन के नाना पक्षों को समेटते हुए अंत में त्रिपाठी जी ने उनके लेखन पर भी संक्षिप्त किन्तु गंभीर टिप्पणियां लिखी हैं जो पठनीय हैं। उनके निधन से जुड़े ब्यौरे (अखबारों में छपी श्रद्धांजलियां इत्यादि) भी पुस्तक में हैं। कहना न होगा कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी को हम जानते भले रहे हों लेकिन उनको आचार्य क्यों माना जाए, यह पुस्तक सहज बता देती है। एक अध्यापक का ऐसा गौरव गान किसी भी भाषा के शिक्षण समाज के लिए कितने महत्त्व की बात है, यह कहने की बात नहीं।

एक जगह त्रिपाठी जी ने बात-बात में जैसे तुलना करते हुए लिखा है - 'विश्वनाथ जी के क्लास में हम प्रबुद्ध, सजग बने रहते, धरती पर ही रहते, द्विवेदी जी के क्लास में हम साहित्य-लोक में पहुंच जाते। ज्ञान रस बन जाता। ज्ञान की साधना और सेवा दोनों की प्रेरणा मिलती।'

ज्ञान रस बन सके ऐसा अध्यापन चाहिए। पढ़ना बोझ न लगे तो पढ़ाई सबसे अच्छी है। साहित्य की पढ़ाई के लिए तो और भी जरूरी है यह रस वर्षा। ◆